पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का राजनैतिक दृष्टिकोण

डॉ. राजेश कुमार,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

भारतीय चिंतनधारा में अनेक महापुरूषों ने अपने ज्ञान और दर्शन से विश्व को प्रभावित किया है। इनकी मेधा से मनुष्य ने अपने जीवन में व्यापक बदलाव करके भारतीय अस्मिता को अलग पहचान दी है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारत में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के राजनैतिक और सामाजिक दर्शन ने समाज को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। उनके वैचारिक दृष्टिकोण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सैद्धान्तिक नहीं है, बल्कि व्यावहारिक है। भारतीय संस्कृति का समाज के परिप्रेक्ष्य में उनका दर्शन मानव कल्याण की भावना का आग्रह करता है। उनका वैचारिक दर्शन उनके भारत भ्रमण की यात्रा की देन है जहाँ उन्हे देश को नजदीक से देखने का अवसर मिला और क्षेत्र के स्तर पर लोगों की भौगोलिक जरूरतों को समझने का प्रयास किया।

बीज शब्दः *राजनैतिक नैतिकता, समानता, धर्म एवं संस्कृति, सनातन समाज*

प्रस्तावना

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने पूर्व में स्थापित उन अवधारणओं और राजनैतिक सिद्धान्तों का गहन विश्लेषण किया और वे इस बिन्दू पर पहुँचे कि राजनीतिक सिद्धान्तों का अनप्रयोग सत्ता हासिल करने के लिए नहीं होना चाहिए। इसका आधार सामाजिक जरूरतों के आलोक में नैतिकता के आधार पर होना चाहिए। भारतीय संस्कृति में उन सद्गुणों के विकास पर बल दिया जाता है जो मनुष्य के जीवन को और बेहतर बनाने में सहायता प्रदान करते हैं। पं. दीनदयाल जी के राजनीतिक विचारों के अध्ययन एवं विश्लेषण करने के लिए हमें उनके एक प्रसंग को जानना चाहिए। जौनपुर के उपचुनाव में वे इस कारण से प्रत्याशी के रूप में चुनाव यह अध्ययन करने के लिए लड़ते हैं जिससे वे मतदाताओं के निर्णयों के आधारों को समझ सके। उन्हें यह भलि–भांति मालूम था कि वे चुनाव हारेंगे, फिर भी वे मतदाताओं को लोकतंत्र में भागीदारी और अच्छे प्रत्याशी को चुनने के लिए धन्यवाद देते हैं और इसके लिए अनेक सभाओं का आयोजन करते हैं। दरअसल वे राजनेता नहीं थे, बल्कि भारतीय संस्कृति के अग्रदूत थे। यह एक सामान्य–सी प्रक्रिया है कि देश का हर नागरिक यह चाहता है कि उसका प्रतिनिधि ईमानदार और राष्ट्रवादी हो। यही धारणा ही दीनदयाल जी के विचारों का आधार बनी। वे भारतीय जनसंघ के प्रचारक थे, और इस कारण से उनका मानना था कि 'स्वयंसेवक को राजनीति से अलिप्त रहना चाहिए, जैसे कि मैं हूँ। स्वयंसेवकों को उनके इस कथन पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि आप एक राजनीतिक दल के अखिल भारतीय महामंत्री हैं, आप राजनीति से अलिप्त कैसे? तब दीनदयाल

जी ने जवाब दिया कि मैं राजनीति के लिए राजनीति में नहीं हूँ, वरन मैं राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूँ।'[1] स्पष्ट है कि वे किसी भी विचार का समग्रता में चिंतन करते हैं। उनके सामने साम्यवाद और साम्राज्यवाद जैसे विचार थे, जिनका सामना उन्होंने भारतीय दृष्टिकोण से किया। सामाजिक विकास की द्वन्द्वात्मक और भौतिकवादी स्थापित अवधारणाएँ थी, जिनके प्रत्युत्तर में उन्होंने मानव सभ्यता और परोपकार पर बल दिया। राजनीति में लोकतान्त्रिक मूल्यों को किस प्रकार बढ़ावा देना चाहिए, इसलिए वे स्थानीय स्तर पर विकास करने में विश्वास रखते हैं। राजनीति उनके लिए राष्ट्र सेवा का साधन रही। वे इसमें शुचिता के पक्षधर रहे हैं और भोग की संस्कृति को राजनीति के लिए हेय मानते हैं। उन्होंने अपने जीवन में स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द के द्वारा अपनाई गई हिन्दू संस्कृति का अनुसरण करते हुए हिन्दू धर्म को श्रेष्ठ माना है और इसे वे राजनीति के लिए भी सही मानते हैं। उनका कहना है कि 'पश्चिमी देशों में राष्ट्रीय जीवन में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान शासन संस्था को दिया जाता है वह भारत में कभी नहीं रहा। शासन संस्था के माध्यम से राष्ट्र निर्माण की कल्पना अहिन्दू कल्पना है। इस कारण अपने राष्ट्र का विचार करते समय हिन्दू पद्धति के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण आधार मानना पड़ेगा सर्वसाधारण नागरिक की राष्ट्र चेतना को। इस चेतना का स्तर जितना ऊँचा रहेगा राष्ट्र का स्तर उतना ऊँचा हो सकेगा। केवल शासकों की या कुछ नेताओं की उच्च छवि निर्माण करने के सहारे देश बहुत बड़ा नहीं हो सकता।'[2]

भारत की संस्कृति विविध है, इस कारण से यहाँ पर समाज अनेक जातियों और वर्गों में विभाजित भी दिखाई देता है। इसके बावजूद उन सभी में सांस्कृतिक एकता के गुण मिलते है। इसका कारण यह है कि हम भारत के गणतंत्र में विश्वास करते हैं। उपाध्याय जी ने इस ओर काफी ध्यान आकर्षित किया है कि ऐसी स्थिति में अनेक राजनीतिक दलों का होना स्वाभाविक है। ये सभी जाति और वर्ग आधारित होते हैं, परन्तु हमें अपने विवेक से ऐसे प्रतिनिधि को चुनना चाहिए जो देश की अखण्डता और समृद्धि को बनाए रख सके। यहाँ हमें कूटनीति से नहीं, अपनी राष्ट्रीय भावना से निर्णय लेना चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ियाँ हमारे राजनीतिक निर्णयों पर गर्व कर सकें। राजनीति में उन्होंने धनबल और बाहुबल को नकारते हुए इसे भारतीय संस्कृति के विरूद्ध आचरण माना है। मनुष्य के जीवन में धन और शक्ति की उपयोगिता होती है, परन्तु मानव रक्षा और जरूरतों के लिए न कि समाज में भय का वातावरण करने के लिए। राजनीति कैसी हो इसका उल्लेख भी पं. दीनदयाल जी ने किया है कि 'राज्य को न तो पूर्णतः स्वच्छंद होना चाहिए न हि निरंकुश। यदि राजा स्वच्छंद हो जाता है तो वह प्रजा के कल्याण, हितों की उपेक्षा कर अपने आप में मस्त रहता है। तो ऐसे राज्य ज्यादा दिनों तक स्वतंत्र नहीं रह पाते।'[3] कहने का तात्पर्य यह है कि निरंकुशता और स्वच्छंदता राजनीति के लिए दोनों ही घातक हैं। ये राजा को भोग की संस्कृति की ओर ले जाते हैं जिसके कारण वह लोभ, ईर्ष्या, चाटुकारिता में विश्वास करता है और अपने सभासदों पर सदैव संदेह करता है।

समानता का व्यवहार राजनीति में बहुत महत्व रखता है। इसे हमें प्रकृति से सीखना चाहिए। यदि संसार में समान रूप से मनुष्य को कुछ प्रदत्त है तो वह प्रकृति है। संसार में जितने भी धर्म, समुदाय, जातियाँ और वर्ग हैं, उन सब का प्राकृतिक संसाधनों पर समान अधिकार है। राजनीति में भी समानता का होना आवश्यक है। यदि हम अपने नजदीकी लोगों या स्वयं को ही राजनीतिक लाभ पहुँचाने का कार्य करते है तो यह निम्न स्तर और हमारा ओछा दृष्टिकोण है। राजनीति केन्द्रित नहीं विकेन्द्रित होनी चाहिए। समानता की अवधारणा मानवीय है और हमें इस विषय पर उस धर्म की शरण में जाना चाहिए

जहाँ समानता को मानव कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। 'हिन्दुत्व मुख्यतः एक जीवन पद्धति है तथा चिन्तन और विचार के मामले में सबको पूरी छूट देती है परन्तु आचरण के मामले में यह सबको आचार–संहिता में बाँधती है जिसे हिन्दू धर्म कहा जाता है। कोई आस्तिक हो या नास्तिक, कोई संदेहवादी हो या पलायनवादी, यदि वे इस संस्कृति और जीवन पद्धति को अपनाते हों तो वे सभी हिन्दू हैं। हिन्दुइज्म मजहबी एकता पर बल न देकर आध्यात्मिकता और नैतिक आचरण पर बल देता है। इसका आग्रह किसी विशेष पूजा–पद्धति या मतवाद पर न होकर श्रेष्ठ व्यवहार और नैतिक मूल्यों पर है। 'सत्यं वद धर्म चर' का उपदेश इसी सत्य का द्योतक है। वे सभी लोग जो उन नैतिक मूल्यों को अपनाने को तैयार हो, हिन्दुइज्म परिधि में आ सकते हैं। हिन्दुइज्म कोई एक सम्प्रदाय या पथ न होकर उन सब व्यक्तियों और पथों का समाहार है जो ठीक मार्ग को अपनाने और सत्य को ग्रहण करने को उद्यत हो।'[4]

धर्म का अभिप्राय कर्त्तव्य से है और यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसका संसार में उत्स तो है, परन्तु मनुष्य ने इसका कितना पालन किया है। धर्म आदमी को सहिष्णु बनाता है, जिससे कि वह संस्कृति के श्रेष्ठ रूपों का प्रचार प्रसार कर सके। 'जनतंत्र की भागीरथी का आद्यश्रोत सहिष्णुता ही है। इसके अभाव में निर्वाचन तथा संसद आदि की जनतंत्रीय व्यवस्थाएँ प्राणहीन शरीर की भाँति हैं। भारतीय संस्कृति का आधार ही सहिष्णुता है, इसी से जनता जनार्दन की आत्मा का स्तर पहचानने की शक्ति प्राप्त होती है।[5] भारत की संस्कृति की पहचान मूल रूप से 'वसुधैव कुटुम्बकम' के रूप में है। समानता, भातृभाव, लोकमर्यादा, सदाचरण, अहिंसा, सत्यानुकरण और परोपकार की भावना इसी संस्कृति की देन है। यह सब अनायास नहीं है, अपितु, भारत में प्राचीन काल में अनेक संतों और कवियों ने अपने साहित्य के माध्यम से मानववाद की रक्षा हेतु अपने विचारों और पंथों की स्थापना की है और आज के विज्ञान के युग में भी यह धारणा भारतीय जनसमुदाय का संस्कार है। यहि कारण है कि भारत मे धर्म और संस्कृति का अनुसरण किया जाये तो राजनीति में श्रेष्ठता को देखा जा सकता है।

भारतीय संविधान हमें मूलभूत अधिकार देता है कि हम किसी भी धर्म और समुदाय का चयन कर सकते हैं और उसका प्रचार कर सकते हैं, परन्तु इसी के साथ–साथ संविधान में नीति–निर्देशक तत्वों का भी उल्लेख है। ये नीति–निर्देशक तत्व हमें सचेत और नियंत्रित करते हैं कि हमारे अधिकार और हमारी स्वतंत्रता के सामाजिक परिप्रेक्ष्य भी है जिनका हमें सदैव ध्यान रखने की जरूरत है। इन सब का संबंध राजनीति से इस आधार पर है कि यदि हमें राजनीति करनी है तो उसका उद्देश्य समाज सेवा होना चाहिए न कि अपने स्वार्थों के लिए दूसरों का अहित करना। मनुष्य तभी संस्कारी और भारतीय संस्कृति का अनुकर्त्ता बन पायेगा जब वह बार–बार आत्मविश्लेषण करेगा और मानव सभ्यता के लिए सामाजिक कर्मों को वहन करेगा। हमारे सामाजिक संस्कार भारतीय संस्कृति और यहाँ के महापुरूषों की देन हैं। इस पर उपाध्याय जी के अनुसार 'संसार में एकता का दर्शन कर उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचानकर उसमें परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। प्रकृति को ध्येय की सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति तथा उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है। संस्कृति प्रकृति की अवहेलना नहीं करती। बल्कि, प्रकृति में जो भाव सृष्टि की धारणा तथा उसको सुखमय एवं हितकर बनाने वाले हैं, उनको बढ़ावा देकर दूसरी प्रवृत्तियों की बाधा को रोकना ही संस्कृति है।[6]

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय परम्परा में सनातन के आग्रही हैं। यदि समाज में

सुधार लाना है तो हमें उन विचारों का अनुसरण करना होगा जो हमें सनातन समाज की ओर लेकर जा सकने में समर्थ हों। सनातन एक मानव व्यवहार है जो सदियों से सत्य, कर्म और समानता पर आधारित है। भारत की प्राचीन राज्य व्यवस्था अधिक सुदृढ़ थी, उसका कारण यह था कि विश्व के श्रेष्ठ ग्रंथों की रचना यहाँ पर हुई थी और राज्य व्यवस्था उनके प्रति उत्तरदायी थी। इसलिए भारत की प्राचीन परंपराओं का अनुगमन करके ही राजनैतिक धारणा को परिवर्तित किया जा सकता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय राजनीति में सहभागिता की भी चर्चा करते हैं। इसका आधार वे प्रजातंत्रीय व्यवस्था को मानते हैं। गणतांत्रिक होने के पश्चात् भारतीय नागरिक की अपेक्षाएँ बढ़ी हुई थी, परन्तु राजनीति उन सब की अपेक्षाओं के ऊपर खरी नहीं उतर पायी। परिणामस्वरूप देश में गरीबी, बेरोजगारी, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि में भारत में काफी हद तक स्थिति सही नहीं थी। यहाँ उपाध्याय जी भारत की पुरानी प्रजातंत्रीय व्यवस्था का जिक्र करते हैं और पाते है कि उस समय बहुत सारे जनपद स्वतंत्र थे और जनता का जीवन सुखमय था। फिर आज के समय में यह संभव क्यों नहीं हो पाता। इसके लिए वे सबसे बड़ा कारण मानते हैं कि उस समय राजा लोक मर्यादाओं का अनुगमन करता था और प्रजा का व्यवहार भी उसी के अनुरूप था। स्पष्ट है कि राजा और प्रजा की सहभागिता के माध्यम से ही प्रजातंत्रीय व्यवस्था समाज का हित कर सकती है।

निष्कर्ष

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का राजनैतिक चिंतन आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है। चाहे विश्व में पूँजीवादी व्यवस्था हो या फिर समाजवादी या फिर साम्यवादी, ये सभी तब तक असफल होती रहेंगी जब तक इन्हे समाज के अनुकूल आकार नहीं दिया जायेगा। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक इच्छाओं के रूप में पूर्ण करने का आकांक्षी होता है और वह इसी के लिए श्रम करता है। अतः कहा जा सकता है कि उन्होंने राजनीति को सत्ता का माध्यम न मानकर मानवधर्म के रूप में स्वीकार किया है और उसके मूल में धर्म, आध्यात्म और संस्कृति को स्वीकार किया है।

Copyright © 2017, Dr. Rajesh Kumar. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

[1] राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ग्रीष्मकालीन शिक्षा वर्ग उदयपुर में दिया गया उद्‌बोधन (1964)
[2] एकात्म मानववाद, पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 46–47
[3] एकात्म मानववाद, पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 76
[4] हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, एस. राधाकृष्णन
[5] राष्ट्र चिंतन, पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृ. 81
[6] दीनदयाल उपाध्याय जी की वाणी, कृष्णानन्द सागर, पृ. 13